



न्यायिक सिद्धांत

परिचय

न्यायिक सिद्धांत:

यह सिद्धांत या एक ऐसी स्थिति है जिसमें आमतौर पर न्यायालयों द्वारा लागू और बरकरार रखा जाता है। भारतीय संवैधानिक कानून में भी विभिन्न न्यायिक सिद्धांत हैं जो समय के साथ न्यायपालिका द्वारा दी गई व्याख्या के अनुसार विकसित होते हैं।

इस लेख में कुछ महत्वपूर्ण न्यायिक सिद्धांतों पर चर्चा की गई है।

आधारभूत संरचना का सिद्धांत (Doctrine of Basic Structure)

- आधारभूत संरचना के घटकों को भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किया गया है।
- संसदीय लोकतंत्र, मौलिक अधिकार, धर्मनिरपेक्षता, संघवाद, न्यायिक समीक्षा आदि सभी को न्यायालय भारतीय संविधान की मूल संरचना के रूप में मानते हैं।
- मूल:
 - आधारभूत संरचना सिद्धांत की उत्पत्ति जर्मन संविधान में पाई जाती है जिसमें नाजी शासन के बाद कुछ बुनियादी कानूनों की रक्षा के लिये संशोधित किया गया था।
- महत्वपूर्ण नरिणय:
 - वर्ष 1973 के [केशवानंद भारती मामले](#) में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने पहली बार फैसला सुनाया कि संसद के पास संविधान के किसी भी हिस्से में संशोधन करने की शक्ति है, लेकिन यह "संविधान की मूल संरचना" को बदल नहीं सकती है।
 - इंदिरा नेहरू गांधी बनाम राज नारायण मामले (वर्ष 1975) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसकी पुष्टि की गई थी।
 - सर्वोच्च न्यायालय ने 39वें संशोधन अधिनियम (वर्ष 1975) के उस प्रावधान को अमान्य कर दिया, जिसमें प्रधानमंत्री और लोकसभा अध्यक्ष से जुड़े चुनावी विवादों को सभी अदालतों के अधिकार क्षेत्र से बाहर रखा गया था।
 - मूल संरचना सिद्धांत की पुष्टि भिन्निर्वा मल्लिस मामले (वर्ष 1980) और बाद में वामन राव मामले (वर्ष 1981) में की गई थी।
 - इस मामले में सुप्रीम कोर्ट ने मूल संरचना के सिद्धांत के संबंध में भारत के संविधान के अनुच्छेद 31A और अनुच्छेद 31B की वैधता की जांच की।

शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत (Doctrine of Separation of Powers)

- यह मुख्य रूप से राज्य के विभिन्न अंगों, कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका के मध्य शक्तियों के विभाजन को दर्शाता है।
- शक्तियों का पृथक्करण मुख्य रूप से सरकारी शक्तियों के त्रि-सूत्रीकरण को दर्शाता है:
 - एक ही व्यक्ति को राज्य के तीन अंगों में से एक से अधिक का हिस्सा नहीं होना चाहिये।
 - एक अंग को राज्य के किसी अन्य अंग के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये।
 - एक अंग को किसी अन्य अंग को सौंपे गए कार्य नहीं करने चाहिये।
- संवैधानिक प्रावधान:
 - भारतीय संविधान के राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों (DPSP) का अनुच्छेद-50 न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग करता है, "राज्य, राज्य की सार्वजनिक सेवाओं में न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग करने के लिये कदम उठाएगा और इसके अलावा शक्ति के विभाजन की कोई औपचारिक प्रक्रिया नहीं है।"
- महत्वपूर्ण नरिणय:
 - राम जवाया बनाम पंजाब राज्य (वर्ष 1955) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा: "भारतीय संविधान ने वास्तव में पूर्ण कठोरता से शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत को मान्यता नहीं दी है, लेकिन सरकार के विभिन्न भागों या शाखाओं के कार्यों को पर्याप्त रूप से विभेदित किया है।"
 - इंदिरा गांधी बनाम राज नारायण (वर्ष 1975) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा: "शक्तियों का पृथक्करण संविधान की मूल संरचना का हिस्सा है। गणतंत्र के तीन अलग-अलग अंगों में से कोई भी दूसरे को सौंपे गए कार्यों को नहीं कर सकता है।"

तत्त्व और सार का सिद्धांत (Doctrine of Pith and Substance)

- Pith का अर्थ है 'प्रकृति' (True Nature) और Substance का अर्थ है 'किसी चीज का सबसे महत्वपूर्ण या आवश्यक हिस्सा'।
- मूल:
 - इस सिद्धांत को पहली बार कनाडा के संविधान में स्वीकार किया गया था और भारत में इसे भारत सरकार अधिनियम, 1935 के तहत स्वतंत्रता पूर्व अवधि में अपनाया गया था।
- प्रयोज्यता:
 - Pith और Substance के सिद्धांत को आमतौर पर वहाँ लागू किया जाता है जहाँ यह निर्धारित करने का प्रश्न उठता है कि क्या कोई विशेष कानून किसी विशेष विषय (सातवीं अनुसूची में उल्लिखित) से संबंधित है, ऐसे में न्यायालय मामले के सार को देखता है।
 - विधायिका की उपयोगिता (अनुच्छेद 246) से संबंधित मामलों में इसकी प्रयोज्यता के अलावा Pith और Substance के सिद्धांत को संसद द्वारा बनाए गए कानूनों और राज्य विधानसभाओं द्वारा बनाए गए कानूनों (अनुच्छेद 254) में प्रतिकूलता से संबंधित मामलों में भी लागू किया जाता है।
 - ऐसे मामलों में केंद्र और राज्य विधानमंडल द्वारा बनाए गए कानूनों के बीच असंगति को हल करने के लिये सिद्धांत को लागू किया जाता है।
- महत्वपूर्ण नरिणय:
 - प्रफुल्ल बनाम बैंक ऑफ कॉमर्स (वर्ष 1946) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि राज्य का ऐसा कानून, जो उधार दिये गए धन (राज्य का विषय) से संबंधित है, केवल इसलिये कि यह संयोग से प्रॉमिसिरी नोट को प्रभावित करता है, अमान्य नहीं है।

आकस्मिक या सहायक शक्तियों का सिद्धांत

(Doctrine of Incidental or Ancillary Powers)

- यह तत्त्व और सार के सिद्धांत के अतिरिक्त व्याख्या से विकसित हुआ है।
- इस सिद्धांत को तब लागू किया जाता है जब किसी मामले या प्रश्न में प्रमुख विधियों की सहायता करने की आवश्यकता होती है।
- Pith और Substance का सिद्धांत केवल विषयों से संबंधित है, लेकिन आकस्मिक या सहायक शक्तियों का सिद्धांत ऐसे विषयों और उनसे जुड़े मामलों पर कानून बनाने की शक्ति से संबंधित है।
- मूल:
 - इस सिद्धांत का विकास अंग्रेजी कोर्ट ऑफ अपील के "R. v. Waterfield (वर्ष 1963)" से संबंधित नरिणय से हुआ है।
- संवैधानिक प्रावधान:
 - अनुच्छेद 4, अनुच्छेद 2 और 3 के तहत राज्यों के नाम बदलने हेतु प्रदत्त कानून के पूरक और प्रासंगिक मामलों पर कानून में परिवर्तन करने की शक्ति के बारे में बात करता है।
 - अनुच्छेद 169 राज्यों में विधानपरिषदों के उन्मूलन या निर्माण पर संसद को दी गई शक्ति के बारे में बात करता है, "जैसा कि कानून के प्रावधानों को प्रभावी करने के लिये आवश्यक हो सकता है और इसमें ऐसे पूरक, आकस्मिक और परिणामी प्रावधान भी शामिल हो सकते हैं जिनमें संसद आवश्यक समझे।"
- महत्वपूर्ण नरिणय:
 - राजस्थान राज्य बनाम जी चावला (वर्ष 1958) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा: "विधि के विषय पर कानून बनाने की शक्ति के साथ उससे जुड़े सहायक मामले पर कानून बनाने की शक्ति भी होती है जिसे उपर्युक्त कानून बनाने की शक्ति में ही शामिल किया जा सकता है।"

वच्छेदनीयता का सिद्धांत (Doctrine of Severability)

- इसे पृथक्करणीयता के सिद्धांत के रूप में भी जाना जाता है और यह नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा करता है।
- संविधान के अनुच्छेद 13 के खंड (1) के अनुसार, यदि भारत में लागू कोई भी कानून मौलिक अधिकारों के प्रावधानों से असंगत है तो वसिगत की उस सीमा तक वे शून्य होंगे एवं संपूर्ण कानून/अधिनियम को अमान्य नहीं माना जाएगा, बल्कि केवल वे प्रावधान जो मौलिक अधिकारों के अनुरूप नहीं हैं, वे अमान्य होंगे।
- सीमा:
 - यदि कानून का वैध और अमान्य भाग आपस में इतना अधिक मिला हुआ हो कि उसे अलग नहीं किया जा सकता है तो पूरा कानून या अधिनियम अमान्य हो जाएगा।
- मूल:
 - सेवरेबिलिटी का सिद्धांत नॉर्डेनफेल्ड बनाम मैक्समि नॉर्डेनफेल्ड गन्स एंड एम्युनशिन कंपनी लिमिटेड के मामले में इंग्लैंड से विकसित हुआ है, जहाँ यह मुद्दा एक ट्रेड क्लॉज़ से संबंधित था।
- महत्वपूर्ण नरिणय:
 - ए.के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य (वर्ष 1950) में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि संविधान के असंगत होने की स्थिति में अधिनियम का केवल विवादित प्रावधान ही शून्य होगा, संपूर्ण अधिनियम नहीं और जितना हो सके अधिनियम को बचाने के लिये हरसंभव प्रयास किया जाना चाहिये।
 - बॉम्बे राज्य बनाम एफ.एन. बलसारा (वर्ष 1951) मामले में बॉम्बे प्रोहबिशन एक्ट की आठ धाराओं को अमान्य घोषित कर दिया गया। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि जो हिस्सा मौलिक अधिकारों की सीमा तक अमान्य था, उसे बाकी अधिनियम से अलग किया जा सकता है।

आच्छादन का सिद्धांत (Doctrine of Eclipse)

- यह तब लागू होता है जब कोई कानून/अधिनियम मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है।
- ऐसे मामले में मौलिक अधिकार अधिनियम पर भारी पड़ जाता है और इसे अप्रवर्तनीय बना देता है लेकिन यह प्रारंभ से ही शून्य नहीं होता।
- यदि मौलिक अधिकारों द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों को हटा दिया जाए तो उन्हें सुदृढ़ किया जा सकता है।
- यह सिद्धांत केवल नागरिकों के लिये नषिक्रिय स्थिति में रहते हैं, लेकिन ऐसे गैर-नागरिकों के खिलाफ संचालित होते रहते हैं, जिन्हें मौलिक अधिकारों प्राप्त नहीं होता है।
- **संवैधानिक प्रावधान:**
 - आच्छादन का सिद्धांत भारतीय संविधान के अनुच्छेद 13(1) में नहिंति है। आच्छादन का सिद्धांत संविधान के बाद बनने वाली वधियों पर लागू नहीं होता है।
- **महत्त्वपूर्ण नरिणय:**
 - यह नरिणय भारत में पहली बार भीकाजी नारायण धाकरा बनाम मध्य प्रदेश राज्य (वर्ष 1955) मामले में सुनाया गया था, जहाँ मध्य प्रांत और बरार मोटर वाहन (संशोधन) अधिनियम, 1947 में प्रांतीय सरकार को संपूर्ण प्रांतीय मोटर परिवहन व्यवसाय लेने का अधिकार दिया गया था, जो अनुच्छेद 19(1)(छ) का उल्लंघन है।
 - सुप्रीम कोर्ट ने माना कि आच्छादित कानून को कुछ समय के लिये मौलिक अधिकार द्वारा आच्छादित (Eclipsed by the Fundamental Rights) कर लिया गया था।

प्रादेशिक गठजोड़ का सिद्धांत (Doctrine of Territorial Nexus)

- इसमें कहा गया है कि राज्य विधानमंडल द्वारा बनाए गए कानून राज्य के बाहर लागू नहीं होते हैं, जब तक कि राज्य और वषिय-वस्तु के बीच पर्याप्त संबंध न हो।
- **संवैधानिक प्रावधान:**
 - यह सिद्धांत भारतीय संविधान के अनुच्छेद 245 से अपनी शक्ति प्राप्त करता है।
 - अनुच्छेद 245 (2) में यह प्रावधान है कि संसद द्वारा बनाया गया कोई भी कानून इस आधार पर अमान्य नहीं होगा कि इसका अतिरिक्त-क्षेत्रीय संचालन होगा यानी यह भारत क्षेत्र के बाहर प्रभावी होगा।
- **महत्त्वपूर्ण नरिणय:**
 - ए.एच. वाडिया बनाम आयकर आयुक्त (वर्ष 1948) मामले में यह माना गया था कि किसी सर्वोच्च वधायी प्राधिकरण की वैधता पर प्रश्न उठाने के आधार पर अधिनियमन की अतिरिक्त क्षेत्रीयता का प्रश्न कभी नहीं उठाया जा सकता है।
 - बॉम्बे स्टेट बनाम आरएमडीसी (वर्ष 1952) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि बॉम्बे वधायिका को प्रतिवादी पर कर लगाने में सक्षम बनाने के लिये एक पर्याप्त प्रादेशिक गठजोड़ मौजूद था क्योंकि सभी गतिविधियाँ जो कि प्रतियोगी से आमतौर करने की उम्मीद की जाती है, वे बॉम्बे में हुईं।

छद्मता का सिद्धांत (Doctrine of Colourable Legislation)

- इस सिद्धांत को "संविधान के साथ धोखाधड़ी" भी कहा जाता है।
- छद्मता का सिद्धांत तब लागू होता है जब किसी वधायिका के पास किसी विशेष वषिय पर कानून बनाने की शक्ति नहीं होती है लेकिन फिर भी वह अप्रत्यक्ष रूप से उस पर कानून बनाती है।
- इस सिद्धांत को लागू करने से आच्छादित विधान के भवषिय का नरिणय होता है।
- **मूल:**
 - इस सिद्धांत की उत्पत्ति एक लैटिन कहावत से हुई है, जिसका इस संदर्भ में अर्थ है: "जो कुछ भी वधायिका प्रत्यक्ष रूप से नहीं कर सकती, वह अप्रत्यक्ष रूप से भी नहीं कर सकती"।
- **संवैधानिक प्रावधान:**
 - यह सिद्धांत आमतौर पर अनुच्छेद 246 पर लागू होता है जिसने संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची के तहत विभिन्न वषियों को रेखांकित करके संसद एवं राज्य विधानसभाओं की वधायी क्षमता का सीमांकन किया है।
- **सीमा:**
 - इस सिद्धांत का वहाँ कोई अनुप्रयोग नहीं है जहाँ एक वधायिका की शक्तियाँ किसी संवैधानिक सीमा से बँधी नहीं हैं।
 - यह अधीनस्थ विधान पर भी लागू नहीं होता है।
- **महत्त्वपूर्ण नरिणय:**
 - आर.एस. जोशी बनाम अजीत मलिस (वर्ष 1977) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना कि बल/शक्ति के विधान में, प्रशासनिक बल पर छद्म अभ्यास अथवा जबरन वसूली या संविधान में लिखी गई बातों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करना आदि ऐसी अभवियक्तियाँ हैं जो केवल यह दर्शाती हैं कि विधानसभा एक वशिष्ट कानून को अधिकृत करने के मामले में दक्ष नहीं है, भले ही उस पर योग्यता का नशान लगाया गया हो, और कुल मिलाकर यह छद्म अधिनियमन है।"

प्रसादपर्यंत का सिद्धांत (Doctrine of Pleasure)

- **मूल:**
 - प्रसादपर्यंत के सिद्धांत की उत्पत्ति अंग्रेजों के कानून से हुई जिसके अनुसार, एक सविलि सेवक क्राउन के प्रसादपर्यंत पद धारण करता है।
- **संवैधानिक प्रावधान:**

- अनुच्छेद 155 के अनुसार, किसी राज्य के राज्यपाल को राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है और वह राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत पद धारण करता है।
- अनुच्छेद 310 के तहत सविलि सेवक (रक्षा सेवाओं, सविलि सेवाओं, अखलि भारतीय सेवाओं के सदस्य या केंद्र/राज्य के तहत सैन्य पदों या सविलि पदों पर नियुक्त व्यक्त) राष्ट्रपति या राज्यपाल के प्रसादपर्यंत जैसा भी मामला हो, पद धारण करते हैं।

■ **सीमा:**

- अनुच्छेद 311 इस सदिधांत पर प्रतर्बिंध लगाता है और सविलि सेवकों को उनके पदों से मनमानी बर्खास्तगी के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करता है।

■ **महत्त्वपूर्ण नरिणय:**

- बहिरा राज्य बनाम अबदुल मजीद (वर्ष 1954) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि अंगरेजी कानून को पूरी तरह से और इसके सभी कठोर नहितिर्त्यों के साथ नहीं अपनाया गया है।
- भारत संघ बनाम तुलसीराम पटेल (वर्ष 1965) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि "प्रसादपर्यंत सदिधांत" न तो सामंती युग का अवशेष था और न ही यह बरतिशि क्राउन के किसी वशिषाधिकार पर आधारति था, बल्कि सार्वजनकि नीतिपर आधारति था।

सामंजस्यपूर्ण नरिमाण का सदिधांत

(Doctrine of Harmonious Construction)

- सामंजस्यपूर्ण नरिमाण शब्द का तात्पर्य ऐसे नरिमाण से है जिसके द्वारा किसी अधनियम के वभिन्नि प्रावधानों के बीच सामंजस्य या एकता स्थापति की जाती है।
- जब वैधानकि प्रावधान के शब्द एक से अधिक अर्थ रखते हैं और संदेह है कि कौन सा अर्थ प्रबल होना चाहति, तो उनकी व्याख्या इस तरह से होनी चाहति कि प्रत्येक का एक अलग प्रभाव हो, न की बेमानी या शून्य हो।
- **मूल:**
 - कई मामलों में अदालतों द्वारा दी गई व्याख्याओं के माध्यम से सामंजस्यपूर्ण नरिमाण का सदिधांत उत्पन्न हुआ है।
 - सदिधांत के विकास का मूल आशय शंकरी प्रसाद बनाम भारत संघ मामले के ऐतहिसकि नरिणय के साथ भारत के संवधान में कति गए पहले संशोधन से लगाया जा सकता है।
- **सामंजस्यपूर्ण नरिमाण के नयिम का सदिधांत:**
 - सीआईटी बनाम हदुस्तान बल्क कैरियर्स (वर्ष 2003) के ऐतहिसकि मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने सामंजस्यपूर्ण नरिमाण के नयिम के पाँच सदिधांत नरिधारति कति:
 - न्यायालयों को वरिधाभासी प्रावधानों के टकराव से बचना चाहति और उन्हें वरिधाभासी प्रावधानों को समझना चाहति।
 - एक खंड के प्रावधान का इस्तेमाल दूसरे में नहिति प्रावधान को शून्य करने के लति नहीं कति जा सकता है, जब तक कि न्यायालय सभी प्रयासों के बावजूद अपने मतभेदों को सुलझाने का कोई रास्ता नहीं ढूँढ पाता है।
 - जब वरिधाभासी प्रावधानों में मतभेदों को पूरी तरह से सुलझाना असंभव होता है तो अदालतों को उनकी व्याख्या इस तरह से करनी चाहति ताकि दोनों प्रावधानों का यथासंभव प्रभाव स्थापति कति जा सके।
 - न्यायालयों को यह भी ध्यान में रखना चाहति कि वैसे ही व्याख्या जो एक प्रावधान को शून्य तक कम कर देती है, सामंजस्यपूर्ण नरिमाण नहीं है।
 - सामंजस्य स्थापति करना किसी वैधानकि प्रावधान को नष्ट करना या उसे नषिफल करना नहीं है।
- **महत्त्वपूर्ण नरिणय:**
 - केरल शकिषा वधिषक 1951 के मामले में यह माना गया था कि भौलकि अधिकारों को तय करने में अदालत को नदिशक सदिधांतों पर वचिर करना चाहति और सामंजस्यपूर्ण नरिमाण के सदिधांत को अपनाना चाहति एवं दोनों संभावनाओं के मध्य एक संतुलन बनाकर जतिना संभव हो कानून को उतना प्रभाव दति जाना चाहति।
 - ईस्ट इंडिया होटल्स लि. बनाम यूनयिन ऑफ इंडिया (वर्ष 2001) मामले में यह माना गया कि एक अधनियम को समग्र रूप से पढा जाना चाहति। वभिन्नि प्रावधानों के मध्य सामंजस्य बनाना है और उन सभी को प्रभाव देना है।